संपादकीय

धरती को चरागाह बनाती सभ्यता

"मशीनें,
पेडों को उखाड चुकने के बाद हाँफती हैं।
अब हाँफती मशीनें ढूँढती हैं
कहीं कोई पेड़ की छाँह।"

जसिन्ता केरकेट्टा, 'जड़ों की जमीन', पृ. 156

विज्ञान का आविष्कार मनुष्य की भलाई के लिए हुआ है। वह दिन-ब-दिन आगे बढता जा रहा है। आज हालात का उलट-फेर हो रहा है। मनुष्य आज विज्ञान के विकास के लिए अपना सर्वस्व गंवा रहा है। आज मनुष्य की भलाई की जगह और कुछ हो रहा है। यह क्यों? क्या विज्ञान, वैज्ञानिक आविष्कार एवं उसके प्रयोजन के लिए कोई नैतिक दृष्टि अनिवार्य नहीं? वह क्यों अनैतिक होता जा रहा है? इस पर सोचते वक्त ऐसा लग रहा है कि वह कहीं पूंजी के हाथ में है। कहीं वह स्पर्धा, लालच को रास्ते का उपकरण बना रहा है। उद्योग एवं व्यापार के क्षेत्र में नैतिकबोध, मानवता इत्यादि बातों के लिए कोई जगह नहीं है। वहाँ मुनाफा ही परम है। पहले तो उद्योग और व्यापार अलग-अलग खेमों में रह रहे थे। पर आज उन दोनों के बीच की दीवार तोड़ दी गई है, पूरे विश्व में उन दोनों की यातायात बहुत सुगम हो रही है। चट्टानों को तोड़कर, खेतों को पाटकर, नदियों-नालों को मिटाकर दोनों अपनी संयुक्त विजय-यात्रा कर रहे हैं। मनुष्य विज्ञान की उपेक्षा नहीं कर सकता है क्योंकि उसका जीवन आज मुख्यतया उसी के आधार पर आगे बढ़ रहा है। उसी तरह वह उसे कब तक कसकर पकड़ सकता है? यही सबसे बड़ा सवाल है। याने मनुष्य विज्ञान का आलिंगन नहीं कर सकता है और उससे तलाक भी नहीं कर सकता है। विज्ञान के विकास को मंद करने की चिन्ता में है, जैसे आणविक ऊर्जा के खिलाफ मनुष्य आवाज उठाने लगा है, यह भी ठीक है कि हमारी सरकार कूडमकुळम (तमिलनाडु के) में उस ऊर्जा परियोजना का विस्तार कर रही है। ठीक उसी तरह एक्सप्रेस राजमार्ग, बड़े-बड़े बांध, बड़े-बड़े उद्योग, बड़ी-बड़ी इमारतों के खिलाफ मनुष्य अपना विरोध प्रकट रहा है, उसी वक्त सरकार विश्व के राष्ट्रों, उद्योगपतियों, पूंजिपतियों का 'रेड कारपेट' स्वागत कर रही है। ऐसी हालत में विकल्प कहाँ? और क्या है? यही सवाल है।

मैं ने आरंभ में जसिन्ता केरकेट्टा की चार पंक्तिवाली 'हांफती मशीनें' शीर्षक कविता को उद्धृत किया है। यहाँ पेड़ सिर्फ जंगल नहीं है, संपूर्ण प्रकृति और उसकी जैविकता है और उससे जुड़े किसान एवं आदिवासी हैं। प्रकृति को, उसकी जैविकता को, नदी-नाले, खेत-खलिहान, पहाड़-पर्वत, चट्टानों को मिटाकर मशीनें और उसके चालक मनुष्य काफी आगे पहुँच गए हैं। मशीनें सिर्फ यंत्र नहीं, उससे बढ़कर मशीनी सभ्यता, उक्त सभ्यता के गुणभोक्ता एवं उसके पालन-पोषण करनेवाले भी हैं। पर आज ये सब हाँफते हैं, बुरी तरह हाँफते हैं। महानगरों में प्राणवायु और पेयजल नहीं मिल

रहे हैं। ऑक्सीजन पारलर, पानी प्यूरीफिकेशन की करतूतें जोरदार ढंग से चल रही हैं। महानगर के सभ्य मशीनी लोग - मशीन में तब्दील होते मनुष्य - सागर तट, जंगल तथा प्रकृति की अन्य नैसर्गिक जगहों में, उसकी ही क्रोड़ में विहरण करने लगे हैं, उसके लिए मजबूर होने लगे हैं। कहीं वे प्रकृति की जैविकता ढूँढ रहे हैं। बोतलों में मिट्टी, पानी, पेड़-पौधे, मछली इत्यादि को नमूने के रूप में ही सही, कहीं चित्र के रूप में भी मनुष्य अपनी आगामी पीढ़ी के लिए संजोकर रखने लगे हैं। सबका विनाश करके, अब उसे संग्रहालय में तलाशने लगे हैं। खेती के लिए विश्वविद्यालय खोला गया, उत्पादन बढ़ाने के लिए उसका औद्योगीकरण किया गया, शोध के लिए शोध करने लगा और यहाँ के परम्परागत बीजों को मिटा दिया गया। जी.एम. सीड्स, रासायनिक उर्वर एवं कीटनाशकों की सहायता से, मशीनों (ट्रेक्टर-टिल्लर, काटने-कूटने की मशीनें आदि) की सहायता से आधुनिक हिंसक सभ्यता आगे बढ़ती रही। आज मनुष्य रोग से बुरी तरह पीड़ित होने लगा, विकलांग बच्चे पैदा होने लगे। इससे बचने के बहाने व्यायाम करके छर्वी कम करने के लिए कसरत के केन्द्र खोले गए। पौष्टिक पदार्थों का वितरण करने लगा। वह नकाफी होने पर शहर को अब ग्रामीण उत्पन्न - दूध, घी, अंडा, मांस, अनाज, दाल सबकुछ - चाहिए, बड़े-बड़े मॉलों में उसके लिए अलग कौने (कोर्नर) का प्रबन्ध हो रहा है। इस तरह सभ्य मनुष्य एक ओर मशीन के पीछे और दूसरी तरफ प्रकृति की जैविकता की तलाश में भटकने लगा है। कृत्रिम जैविकता का कार्य भी हो रहा है। क्या वह एक विकल्प बन जाएगा?

जैविकता प्रकृति की सबसे बड़ी देन है। उस प्रकृति को मिटाकर उसकी पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ कर, संपूर्ण पर्यावरण को दूषित करके अब जैविकता की तलाश करता है। मूलतः मनुष्य का संबन्ध प्रकृति से है। उससे कटकर मनुष्य मनुष्य नहीं बन सकता, वह मशीन बनने लगा है, मशीन बना मनुष्य अब हाँफने लगा है। सदियों से प्रकृति से एकमेक होकर आगे बढ़ा मनुष्य आधुनिक सभ्यता के भ्रम में पड़कर बुरी तरह भटक गया। वह बाजार की चकाचौंध, सुखसुविधाओं एवं भोग-विलास में डूब कर प्रकृति से कट गया, उसे अपना संसाधन मात्र समझने लगा। वह अपने को जैविक प्राणी होने के सच को भूल गया। पैसे के बल पर सबकुछ हासिल कर सकता है, इस भ्रम में जीने लगा। इधर सुविधा कम है तो और कहीं जाने को भी तैयार हुआ। अब धरती को छोड़कर अन्य ग्रह में प्रवास करने का अनुसंधान शुरू किया गया है। टिकाऊ विकास पर वह अड़िग नहीं रह सका। टिकाऊ विकास की अनिवार्यता की बातें करने वालों को सिरफिरा, पागल, अव्यावहारिक कहता रहा। इस दंभ में आगे बढ़ता मनुष्य अपने पैर तले की जमीन बह जाने पर भी अनजान रहा। इस तरह जीवन की जैविकता, प्रकृति से दूर होता रहा।

अब पर्यावरण की सुरक्षा के लिए निगम, बोर्ड आदि की स्थापना करने लगा, प्लास्टिक, डीजल आदि पर प्रतिबन्ध लगाने लगा। लेकिन समांतर ढंग से नहीं, बड़ी तादाद में ऊर्जा उत्पादन के लिए पारिस्थितिक संतुलन को बिगाड़ने व मिटाने वाले कार्यक्रम तथा युद्ध के उपकरणों के निर्माण एवं व्यापार की तादाद भी बढ़ाने लगा। प्रदूषण को स्थानापन्न करने के लिए कारबन ट्रेड का बहाना ढूँढ़ निकाला है। पैसा और सैनिक बल हो तो सबकुछ कर सकता है, प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर सकता है। मात्र कारबन ट्रेड करके क्षतिपूर्ति करना है।

इन सबका विरोध-प्रतिरोध तो हो रहा है, लेकिन प्रतिरोध करने वालों के पास पैसा नहीं, ताकत भी नहीं है। फिर भी कई तरह के प्रतिरोध चल रहे हैं, जिसके असर को नजरअन्दाज नहीं कर सकता है। उसका सक्रिय हिस्सा होना हमारा दायित्व है। आज कई तरह के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष आन्दोलन भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में चल रहे हैं। लेकिन सरकार के वरद हाथ से अनुगृहीत लोग प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन कर रहे हैं। प्राकृतिक आपदाओं के आगे भी वे आँखें खोलते नहीं, क्योंकि उनके पास पैसा है, कहीं जा सकते हैं, कुछ भी खरीद सकते हैं, शासन-प्रशासन उसका चमचागिरी करते हैं। मंत्री एवं अफसर उनसे दोस्ती करते हैं, मौज मनाते हैं। प्रकृति का, पर्यावरण का, पारिस्थितिकी का खिल्ली उठाते हैं।

समकालीन रचनाकार उन सबसे अपनी अपनी रचनाओं के जरिए मुख़ातिब करते रहे हैं। लेकिन पूंजी और सत्ता के बल पर छलांग मारती इस सभ्यता के खिलाफ और सख़्त कदम की जरूरत है, इसमें कोई संदेह नहीं।

पी. रवि

अनुक्रम

संपादकीय : धरती को चरागाह बनाती सभ्यता	पी. रवि	
अतिथि संपादकीय : पृथ्वी अत्यंत संवेदनशील है	वी.जी. गोपालकृष्णन	
साहित्य, समाज और पर्यावरण	संतोष अर्श	10
जलवायु परिवर्तन और अमिताभ घोष	गोपाल प्रधान	18
विस्थापन : विडम्बना और त्रासदी	वीरेन्द्र मोहन	33
पर्यावरण और विकास का आतंक	सुप्रिया के.पी.	40
समकालीन हिंदी कविता में पर्यावरण और मानवाधिकार के प्रश्न	डॉ. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत	52
पारिस्थितिक शोषण और समकालीन हिन्दी कविता	डॉ. रम्या पी.आर.	69
समकालीन हिन्दी कविता में पृथ्वी-बोध	धन्या के.पी.	76
पर्यावरण एक सांस्कृतिक संकट है	डॉ. ए.एस. सुमेष	82
'डिजिटल दुनिया' से झाँकने पर प्रकृति और आम जन	रम्या राज आर.	86
पारिस्थितिक विमर्श और नागार्जुन की कविता	प्रो. प्रमोद कोवप्रत	90
पारिस्थितिकी और साहित्य : लोककवि कबीर के आईने में	विजय कुमार संदेश	98
कालिदास के काव्य में वन, वन्य जीवन और वन्य संस्कृति	दादूराम शर्मा	101
समकालीन हिन्दी नाटक में पारिस्थितिक नारीवाद	के. अजिता	108
संतुलन चाहती धरती और संतुलन बिगाड़ते मनुष्य	हरिप्रिया आर.	114
पारिस्थितिक नारीवाद : 'धार' और 'पहाड़चोर' के विशेष संदर्भ में	डॉ. इंदु पी.एस.	120
भूमिपुत्र होना ही पड़ेगा	शिगेष जी.एस.	124
हरित क्रांति की फसल है कैंसर	रामप्रसाद	133
रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून	नीलाभ कुमार	139
एक लाल तर्जनी (मलयालम कहानी)	पी. वत्सला	146
खेती और समकालीन मलयालम कहानी	सिन्धु ए.	154
राजनैतिक स्वार्थ और शोषित होती प्रकृति	मन्जुषा के.एम.	160
बाज़ारवादी दौर में पारिस्थितिकी	अंजली जोसफ़	167